श्रीधर स्वामी की निर्वाण-भूमि : कुण्डलपुर

पंडित जगन्मोहनलाल शास्त्री
कुंडलपुर

अंतिम केवली श्रीधर स्वामी की निर्वाण-भूमि का नामोल्लेख तिलोयपण्णति, निर्वाण काण्ड आदि में आया है। इन्हीं के आधार पर उक्त निर्वाण भूमि का निर्णय करने का प्रयास कुछ विद्वानों द्वारा पिछले बीस, बाइस वर्षों में किया गया है। इस संबंध के प्रायः सभी शास्त्रीय उल्लेखों को दृष्टि में रखकर तत्सम्बन्धी उपलब्ध लेखों का मनन करके तथा कुछ नवीन उद्घाटित प्रमाणों पर विचार करते हुए इस लेख में भगवान् श्रीधर स्वामी के निर्वाण स्थल पर विचार करते हुये मध्यप्रदेश के दमोह जिले में स्थित प्रसिद्ध और मनोरम क्षेत्र कुण्डलपुर को उनकी सिद्धभूमि मानने के कारण और साक्ष्य प्रस्तुत करने का मैं प्रयास कर रहा हूँ। इस लेख का प्रारम्भ शास्त्रोक्त प्रमाणों से करते हुए सर्वप्रथम हम तिलोय-पण्णति की संदर्भित गाथा पर विचार करेंगे। इस यतिवृषभाचार्य द्वारा रचित ग्रंथ के स्वाध्याय काल में देखी (गाथा संख्या १४७९)। इस गाथा के पढ़ने के बाद अनेक प्रश्न उठ खड़े हुए। ये श्रीधर केवली कब हुए? अन्तिम केवली तो जम्बू स्वामी कहे गये हैं, फिर ये चरम केवली कैसे हुए? कुण्डलगिरि कौन-सा स्थान है? इत्यादि। ग्रन्थ के अवलोकन से यह जाना जाता है कि केवली तो अनेक प्रकार के होते हैं पर प्रत्येक तीर्थंकर के समय दो तरह के केवली मुख्यतया कहे गये हैं : १. अनुबद्ध केवली और २. अननुबद्ध केवली। अनुबद्ध केवली वे हैं जो भगवान् के समवशरण में स्थित अनेक शिष्यों में भगवान् के पश्चात् मुख्य उपदेष्टा परंपरा में केवलज्ञानी होकर हुए। जो परिपाटी क्रम में नहीं हुए किन्तु केवली हुए, वे अननुबद्ध केवली कहलाते हैं। इनकी संख्या प्रत्येक तीर्थंकर के समय अलग-अलग बताई गई है। उदाहरणार्थ, भगवान् ऋषभदेव के समवशरण में केवली संख्या २०००० पर अनुबद्ध केवली केवल ८४। श्री अजितनाथ तीर्थंकर के समवशरण में सम्पूर्ण केवल ज्ञानियों की संख्या २०००० पर अनुबद्ध केवली केवल ८४। इसी प्रकार प्रत्येक तीर्थंकर के अनुबद्ध और अननुबद्ध केवली की संख्यायें भिन्न हैं। भगवान् महावीर के समवशरण में केवली ज्ञानी ७०० थे और अनुबद्ध केवली केवल तीन थे।

इसका यह अर्थ है कि भगवान् महावीर के पट्टशिष्य श्री गौतम गणधर थे, भगवान् महावीर के पश्चात् कार्तिक कृष्ण १५ को ही श्री गौतम केवली हुए। उनके पट्ट पर रहने वाले सुधर्माचार्य थे जो गणधर तो भगवान् महावीर के थे पर उनको पट्ट श्री गौतम स्वामी के बाद प्राप्त हुआ। सुधर्माचार्य भी केवली हुए। उनके पट्ट पर श्री जम्बू स्वामी हुए जो केवली हुए। जम्बू स्वामी के पट्ट पर श्री विष्णुनन्दि तथा विष्णुनन्दि के पट्ट पर श्री नन्दिमित्र, नन्दिमित्र के पट्ट पर अपराजित, फिर गोवर्धन और उनके पट्ट पर श्रीभद्रबाहु (प्रथम) हुए, पर ये सब श्रुतकेवली हुए, केवली नहीं हुए। इनकी शिष्य-प्रशिष्य परम्परा आगे भूतबलि आचार्य तक ६८३ वर्ष प्रमाण चली। यद्यपि आचार्य परम्परा आगे भी चली परन्तु यहाँ तक अंगज्ञान रहा। इसके बाद अंगधारी नहीं हुए।

इस प्रकार पट्टधर शिष्यों की परम्परा में ३ केवली हुए। वे भगवान् महावीर के अनुबद्ध केवली थे। इनके सिवाय जो ७०० केवली समवशरण में थे, वे अननुबद्ध केवली थे। उनमें सभी केवली अपनी-अपनी आयु के अन्त में सिद्ध पद को प्राप्त हुये होंगे। यद्यपि इनका समयोल्लेख नहीं है, तथापि पञ्चम काल की आयु १२० वर्ष कहीं है तब इनकी आयु भी अधिक से अधिक इतनी अथवा चतुर्थकाल में इनका जन्म होने से कुछ वर्ष अधिक भी रही हो, तो भी भगवान् के मुक्तिगमन काल के बाद प्रथम शताब्दी में ही इनका मुक्तिगमन सिद्ध है। इन ७०० केवलियों में अन्तिम श्री श्रीधर स्वामी थे जिनका तिलोयपण्णति में कुण्डलगिरि में मुक्तिगमन बताया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रन्थ में उक्त उल्लेख पढ़ने पर मेरा ध्यान सर्वप्रथम दमोह (मध्यप्रदेश) के निकट स्थित कुण्डलपुर ग्राम पर गया। यह पर्वत कुण्डलाकार (गोल) है, अतः कुण्डलगिरि हो सकता है। अन्यत्र ऐसा पर्वत नहीं है और न ऐसे ग्राम की ही प्रसिद्धि है। मूलनायक विशाल प्रतिमा भगवान् महावीर की है, ऐसी प्रसिद्धि है। तथापि चिह्न के स्थान पर इसमें कोई चिह्न नहीं है। अब यह प्रतिमा आदिनाथ की मानी जाती है और बड़े बाबा के नाम से प्रसिद्ध है। यह स्थान श्री १००८ श्रीधर केवली की निर्वाण-भूमि है, यह नीचे लिखे प्रमाणों से स्पष्ट है :

१. पूज्यपादकृत दशभक्ति में निर्वाण भक्ति के प्रकरण में निर्वाण क्षेत्रों के नामों की गणना है। ऋष्याद्रि-मेढ्रक-कुण्डल-द्रोणीमति-विंध्य-पोदनपुर आदि अनेक निर्वाण भूमियों के नाम हैं। इनमें पंच पहाड़ियों में सभी के नाम नहीं हैं। केवल उनके नाम हैं जो सिद्ध स्थान हैं। वे हैं वैभार-विपुलाचल-ऋष्याद्रिक। कुण्डल शब्द के साथ मेढ्रक शब्द है। इन दोनों के पूर्व प्रबल शब्द और उसके बाद ही पंचपहाड़ियों में उसका नाम है। इससे सिद्ध है कि जिस प्रकार मेढ्रक मेढ़गिरि के लिए अलग से आया है, इसी प्रकार कुण्डल शब्द कुण्डलगिरि के लिये अलग से आया है। फलतः मेढ़गिरि की तरह कुण्डलगिरि स्वतन्त्र निर्वाण भूमि है। अन्यथा निर्वाण भूमि में उसका उल्लेख न पाया जाता। निर्वाण भूमियों में उसका नाम आना उस स्थान को सिद्ध-भूमि मानने के लिये पर्याप्त प्रमाण है।

निर्वाण भक्ति में इसके पूर्व के श्लोकों में तीर्थंकरों की निर्वाण भूमियों के नाम देकर आठवें श्लोक के पूर्व निम्न उत्थानिका भी है :

"इदानीं तीर्थंकरेभ्योऽन्येषां निर्वाणभूमिम् स्तोतुमाह"

आठवें श्लोक में शत्रुञ्जय तुङ्गीगिरि का नामोल्लेख है—दसवें श्लोक में भी कुछ नाम हैं। इन सभी श्लोकों का अर्थ निम्न होता है :

द्रोणीमति (द्रोणगिरि), प्रबलकुण्डल, प्रबलमेढ्रक ये दोनों, वैभार पर्वत का तलभाग, सिद्धकूट, ऋष्याद्रिक, विपुलाद्रि, बलाहक, विंध्य, पोदनपुर, वृषदीपक, सह्याचल, हिमवत्, लम्बायमान गजपंथ आदि पवित्र पृथ्वियों में जो साधुजन कर्मनाश कर मुक्ति पधारे, वे स्थान जगत् में प्रसिद्ध हुए। आगे के श्लोकों में इन स्थानों की पवित्रता का वर्णन कर स्तुति की है।

प्रस्तुत प्रसङ्ग में कुण्डल शब्द पर विचार करना है। टीका में कुण्डल और मेढ्रक की "प्रबल कुण्डले प्रबल मेढ्रके च" ऐसा लिखा गया है जिसका अर्थ स्वतन्त्रता से श्रेष्ठ कुण्डलगिरि और श्रेष्ठ मेढ्रगिरि होता है। पांच पहाड़ियों में केवल ३ नाम आए हैं। ऋष्याद्रिक को टीकाकार ने श्रमणगिरि लिखा है। पांच पहाड़ियों के नाम निम्न हैं : (१) रत्नागिरि (ऋषिगिरि), (२) वैभारगिरि (३) विपुलाचल (४) बलाहक (५) पाण्डु। बौद्ध ग्रन्थों में पांच पहाड़ियों के नाम इस प्रकार हैं—(१) वेपुल्ल (२) वैभार (छिन्न श्रमणगिरि) (३) पाण्डव (४) इसगिरि (उदयगिरि, ऋषिगिरि) और (५) गिज्झकूट। धवला टीका में इनके निम्न नाम हैं—(१) ऋषिगिरि (२) वैभार (३) विपुलगिरि (४) छिन्न (बलाहक) (५) पांडु। इन तीनों नामावलियों से सिद्ध है कि पांचों पहाड़ियों में कुण्डलगिरि किसी का भी नाम नहीं था और न आज भी है। तब पञ्च पहाड़ियों में उसकी कल्पना का कोई आधार नहीं रह जाता। फलतः कुण्डलगिरि स्वतन्त्र निर्वाण भूमि है, यह सिद्ध होता है। नीचे लिखा प्राकृत निर्वाणभक्ति का उल्लेख भी इसे सिद्ध करता है :

अग्गल देवं वंदमि वरणघरे निवण कुण्डली वंदे।
पासं सिरपुरि-वंदमि होलागिरि संख देवम्मि॥

वरनगर में अर्गलदेव (आदिनाथ) की तथा निर्वाण कुण्डली क्षेत्र की, श्रीपुर में श्री पार्श्वनाथ की तथा होलागिरि शंखद्वीप में श्री पार्श्वनाथ की वंदना करता हूँ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यहाँ इस सिद्धक्षेत्र का उल्लेख 'णवण कुण्डली वन्दे' के रूप में उल्लिखित है। यहाँ कुंडली के साथ निर्वाण शब्द भी है। उस शब्दों पर विचार करने पर पर्वत कुण्डली (सर्प के) आकार है, ऐसा भी अर्थ होता है। क्षेत्र के दर्शक इसे सहज ही समझ सकेंगे। छैघरिया का मन्दिर सर्प के फणाकार है, उसके बाद यह पर्वत सर्प की तरह बल खाता हुआ कुछ उतार के रूप में है जहाँ एक जिन मंदिर है, फिर ऊपर चढ़ाव है जिस चढ़ाव की समाप्ति पर दो जिन मन्दिर हैं, फिर दो मंदिरों के बाद पर्वत पर बलखाते हुये उतार है। जहाँ बड़ा मन्दिर (मुख्य मन्दिर) है, फिर चढ़ाव पर एक मन्दिर है, पश्चात् पांडे के मन्दिर तक समान जाकर पीछे सर्प की पूंछ की तरह लंबायमान चला गया है। सर्पाकृति भी पर्वत की कुण्डलाकार के रूप में है। फलतः इसी आकार के कारण संभव है इसे "कुंडली" लिखा गया है। पर्वत के पीछे भाग से अनेक पर्वत भी कुण्डलाकार इससे जुड़े हैं।

संस्कृत निर्वाण भक्ति के उल्लेख पर यदि 'प्रबलं' शब्द पर विचार किया जाय, तो "श्रेष्ठ" के अतिरिक्त प्रबल का अर्थ 'अनेक' भी होता है। अतः जिसमें अनेक कुंडल हों उसे प्रबल कुंडल भी कहा जा सकता है। इन दोनों उल्लेखों से दमोह का कुंडलगिरि ही कुंडलाकार या सर्पाकार होने से 'कुंडलगिरि' सिद्ध क्षेत्र प्रमाण सिद्ध होता है।

प्रायः अनेक सिद्ध क्षेत्रों का परिचय आकार के आधार पर वर्णित है जैसे मेढ़ागिरि-मेढ़ के आकार, चूलगिरि चूल के आकार, द्रोणगिरि-द्रोण (दोना) के आकार, अथवा भौगोलिक स्थिति के अनुसार द्रोणगिरि का अर्थ होता है, जिस पर्वत के दोनों ओर पानी हो, उसे द्रोणगिरि कह सकते हैं। द्रोणगिरि सिद्ध क्षेत्र के दोनों ओर नदियां बहती हैं। अतः उसका इस अर्थ में भी सार्थक नाम है। इसी प्रकार कुंडल के समान गोलाकार या कुंडली (सर्प) के समान सर्पाकार होने से इस क्षेत्र का परिचय कुंडलगिरि या कुंडली पर्वत के रूप में दिया गया है। दोनों आकारों के कारण दमोह का कुंडलपुर "कुंडलगिरि" ही सिद्ध क्षेत्र है, यह सिद्ध होता है।

इसकी प्रसिद्धि कुंडलपुर के नाम से है, अतः इसे कुंडलगिरि नहीं मानना चाहिये। यह भी तर्क किन्हीं सज्जनों द्वारा उपस्थित किया जाता है। पर इतनी साधारण बात तो प्रत्येक बुद्धिमान् समझता है कि कुण्डलगिरि के समीप ग्राम को 'कुंडलपुर' ही कहा जायेगा। इस क्षेत्र के बदले पांडुगिरि (रामगिरि) को कुंडलगिरि मानने के संबंध में कोठिया जी के मंतव्यों की समीक्षा हमारे सहयोगी पूर्व में कर चुके हैं। अतः उसकी पुनरावृत्ति करने में कोई लाभ नहीं है। यदि पांच पहाड़ियों में इस सिद्ध क्षेत्र का उल्लेख करना अभीष्ट होता तो वे आचार्य अपने उल्लिखित पांच पहाड़ियों में से ही इसका नाम अवश्य लिखते। पांडुगिरि को वृत्ताकार (गोल) लिखा है, इससे कुंडलगिरि हो सकता है—ऐसी कल्पना तो भारत में पाये जाने वाले सभी गोलाकार पर्वतों पर की जा सकती है। यतिवृषभाचार्य ने स्वयं अपने उक्त ग्रंथ में 'पाण्डु' और 'कुंण्डलगिरि' का दो अलग-अलग नामों से विभिन्न स्थानों पर उल्लेख किया है। अतः यह सूर्य की तरह स्पष्ट है कि ये दोनों स्थान भिन्न-भिन्न ही उन्हें इष्ट थे। अतः पाण्डुगिरि को कुण्डलगिरि मानने की बात स्वयं निरस्त हो जाती है। इस पर हमारे सहयोगी ने अन्यत्र विचार किया है। फिर भी यदि किसी अन्य क्षेत्र को कुंडलगिरि प्रमाणित करने के इनसे अधिक कोई स्पष्ट प्रमाण प्रस्तुत किये जाते हैं, तो विद्वज्जन उसकी परीक्षा कर समुचित मत ग्रहण कर सकते हैं।

प्रस्तुत प्रमाणों से "कुण्डलगिरि कोई निर्वाण क्षेत्र है" यह सिद्ध हो गया। प्रश्न अब यह है कि वह स्थान कहाँ है? कुण्डलगिरि मङ्गलाष्टक में आता है। वह मनुष्य लोक के बाहर कुण्डलगिरि द्वीप में है। वह तो निर्वाण भूमि नहीं हो सकता। अन्य चार स्थानों के विषय में मेरे सहयोगी पं० फूलचंद्र जी ने पिछले लेख में विचार किया ही है। इनमें दमोह जिले का कुंडलपुर ही यहाँ अभीष्ट है। यह स्थान श्री श्रीधर स्वामी की निर्वाण भूमि है, ऐसा मेरा वर्षों से मत चला आ रहा है। राजगृह की पंच पहाड़ियों में कुण्डलगिरि होने की आशंका उक्त प्रमाणों में निरस्त हो जाती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसे अतिशय क्षेत्र कहा जाता है। एक अत्याचारी मुगल शासक ने मूर्तिखण्डन करने का यहाँ प्रयास किया था। पर उसके सेवकों पर तत्काल मधुमक्खियों का ऐसा आक्रमण हुआ कि वे सब भाग खड़े हुए। इस अतिशय के कारण यह अतिशय क्षेत्र माना जाता है। निर्वाण-भूमि अभी तक नहीं माना जाता था। यहाँ प्रश्न है कि मुगल काल में यह अतिशय क्षेत्र माना जाए, पर क्षेत्र तो उससे बहुत पूर्व का है। यह छठवीं शताब्दी की कला का प्रतीक है। वहाँ जैनेतर मन्दिर भी, जिसे ब्रह्म मन्दिर कहते हैं, छठी शताब्दी से है ऐसा कहा जाता है। तब छठी शताब्दी से मुगल काल तक १००० वर्ष तक यह कौन-सा क्षेत्र था? यह कुण्डलाकार पर्वत ऐसा स्थान नहीं है जहाँ किसी राजा का किला या गढ़ी है जिससे यह माना जाए कि उसने मन्दिर और मूर्ति बनवाई होगी। कोई प्राचीन विशाल नगर भी वहाँ नहीं है कि किन्हीं सेठों ने या समाज ने मन्दिर निर्माण कराया हो। तब ऐसी कौन-सी बात है जिसके कारण यहाँ इतना विशाल मन्दिर और मूर्ति बनाई गई। तर्क से यह सिद्ध है कि यह सिद्ध-भूमि ही थी जिसके कारण इस निर्जन जंगल में किसी ने यह मन्दिर बनाया तथा अन्य ५७ जिनालय भी समय-समय पर यहाँ बनाये गये हैं। ये जिनालय वि० सं० ११०० से १९०० तक के पाये जाते हैं। सन् संवत् लेख रहित भी बीसों खंडित जिनबिम्ब वहाँ स्थित हैं। वहाँ १७५७ का जो शिलालेख है, वह मन्दिर के निर्माण का नहीं बल्कि जीर्णोद्धार का है। लेख संस्कृत भाषा में है जिसमें यह उल्लेख है कि श्री कुन्दकुन्दाचार्य के अन्वय में यशःकीर्ति नामा मुनीश्वर हुए। उनके शिष्य श्री ललितकीर्ति तदनंतर धर्मकीर्ति पश्चात् पद्मकीर्ति पश्चात् सुरेन्द्रकीर्ति हुए। उनके शिष्य सुचन्द्रगण हुए जिन्होंने इस स्थान को जीर्ण-शीर्ण देखकर भिक्षावृत्ति से एकत्रित धन से इसका जीर्णोद्धार कराया। अचानक उनका देहावसान हो गया, तब उनके शिष्य ब्र० नेमिसागर ने वि० सं० १७५७ माघ सुदी १५ सोमवार को सब छतों का काम पूरा किया।

ऐसी किंवदन्ती चली आ रही है कि चन्द्रकीर्ति (सुचन्द्रगण) नामक कोई भट्टारक भ्रमण करते-करते यहाँ आये, उनका दर्शन करके ही भोजन का नियम था, किन्तु कोई मन्दिर पास न होने से वे निराहार रहे। तब मनुष्य के छद्मवेश में किसी देवता ने उन्हें कुण्डलगिरि पर ले जाकर स्थान का निर्देश किया। वे वहाँ पर गये और उस विशालकाय प्रतिमा का दर्शन किया तथा उन्होंने ही इस मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया। किंवदन्ती शिलालेख के लेख से मेल खाती है, अतः सत्य है। यह जीर्णोद्धार प्रसिद्ध बुन्देलखण्ड-केसरी महाराज छत्रसाल के राज्यकाल में हुआ। कहते हैं अपने आपत्तिकाल में महाराज छत्रसाल इस स्थान में कुछ दिन प्रच्छन्न रहे हैं और पुनः राज-पाट प्राप्त करने पर उनकी तरफ से ही तालाब सीढ़ियाँ आदि का निर्माण भक्ति-वश कराया गया है।

इन सब प्रमाणों के होते हुए भी लोग संदेह करते थे कि वस्तुतः यही स्थान श्रीधर केवली की निर्वाण भूमि है, इसका कोई लिखित प्रमाण उपलब्ध नहीं है। सन् ६७ में, मैं वीर निर्वाण महोत्सव पर कुण्डलगिरि गया था। वहाँ बड़े मन्दिर के चौक में एक प्राचीन छतरी बनी है और उसके मध्य ६ इन्च लम्बे चरण-युगल हैं। अनेकों बार दर्शन किये इन चरणों के। ये भट्टारकों के चरण चिन्ह होंगे, ऐसा मानते रहे। सोचा, चरण चिन्ह तो सिद्ध-भूमि में स्थापित होने का नियम है, यह तो अतिशय क्षेत्र है, सिद्धभूमि नहीं है, अतः यहाँ चरणों पाया जाना यह बताता है कि किन्हीं 'भट्टारकों' ने अपने या अपने गुरु के चरण स्थापित किये होंगे। कभी विशेष ध्यान नहीं दिया पर इस बार हमारे आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब पुजारी ने हमें बताया कि चरणों के नीचे की पट्टी पर कुछ लेख है। हमने तत्काल उसे ले जाकर जमीन में सिर रखकर उसे बारीकी से पढ़ा तो घिसे अक्षरों में कुछ स्पष्ट पढ़ने में नहीं आया, तब जल से स्वच्छ कर कपड़े से प्रक्षालन कर उसे पढ़ा तो उन चरणों के पाषाण से सामने की पट्टी पर लिखा है :

"कुण्डलगिरौ श्री श्रीधर स्वामी"

इस लेख को पढ़ अपनी वर्षों की धारणा सफल प्रमाणित हो गई। इस प्रमाण की समुपलब्धि में कोई सन्देह नहीं रह गया। यह सूर्य की तरह सप्रमाण सिद्ध है कि ये चरण श्री श्रीधर स्वामी के हैं और यह क्षेत्र श्री कुण्डलगिरि है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संभवतः कुंडलगिरि के नाम के कारण नीचे बसे छोटे से ग्राम का नाम कुंडलपुर पड़ा होगा। इसके पूर्व इस ग्राम को 'मन्दिर टीला' नाम से कहते थे। शिलालेख में इसे इसी नाम से उल्लिखित किया गया है। संभवतः ब्र० नेमिसागर जी का ध्यान भी चरणों के उस छोटे लेख पर नहीं गया, जैसे कि पचासों बरसों से उनके दर्शन करने वाले हजारों व्यक्तियों का नहीं गया। यह लेख इसके बाद क्षेत्र के अध्यक्ष श्री राजाराम जी बजाज, सिंघई बाबूलाल जी कटनी तथा वहाँ के एक मन्दिर निर्माणकर्ता ऊँचा के सिंघई तथा अन्य कई लोगों ने पढ़ा है।

चौक में छतरी प्रारम्भ से ही है, नवीन नहीं है। उससे चौक में स्थान की कमी आ जाती है पर प्राचीन होने से अभी तक सुरक्षित चली आई है। यह भी इस बात का प्रमाण है कि यह श्रीधर केवली का मुक्ति स्थान ही है। छतरी बिना प्रयोजन नहीं बनाई जाती। १५०१ के संवत् की एक जीर्ण प्रतिमा में उस स्थान का नाम निषधिका (नसियाँ) भी लिखा है। कटनी के स० सि० धन्यकुमार जी ने श्रीधर केवली के नवीनचरण भी पधराए हैं।

इन प्रमाणों के प्रकाश में यह बिल्कुल स्पष्ट है कि 'कुन्डलगिरि' (दमोह, म० प्र०) ही श्रीधर केवली की निर्वाण-भूमि है।

●

अध्यात्म का क्षेत्र वैज्ञानिक क्षेत्र है। इस यात्रापथ के पथिक को वैज्ञानिक होना और बनना ही पड़ता है। ऐसा नहीं होता कि आचार्य वैज्ञानिक बन जाय, सत्य की खोज करे और उसके अनुयायी उस खोजे हुए सत्य का उपभोग करें। प्रत्येक साधक को वैज्ञानिक बनना होता है, परीक्षण करना होता है और सत्य को ढूढ़ निकालना होता है।

—महाप्रज्ञ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org